मनुष्य बनो

जुलाई
१९६०

बा० १
२०.०

प्रेरणा

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ३६ | जुलाई १९९० | अङ्क १०

शब्द

"मेरे सर पर पाप का बोझ, सखी यह हल्का कौन करें,
मानुष चोला मुफ्त गंवाया-काल के हाथ पड़े-सखी यह—
जिनको अपना समझा था मैं-अब वह परे परे— ,,
सुत दारा और माल खजाना-लूट गये धरे धरे— ,,
मान बड़ाई विषय विकारा-इनमें जीव सड़े— ,,
अन्त समय सब छोड़ गये हैं-मौत से सभी डरे— ,,
पाप भरी यह बेड़ी मेरी-भव से कैसे तरे— ,,
सुमिरन, भजन, ध्यान नहीं कीना-कैसे सुरत चढ़े ,,
सत्गुरु ही है बखशन हारा-काल से वही लड़े— ,,
"गाफिल" छोड़ सयानय सारी-गुरु की शरण पड़े ,,

—:o:—

(रचयिता—स्व० हजूर दीवानचन्दजी आहूजा)

सम्पादकीय

मौज से खुश रहने की आदत डालो। जो होना है होकर रहता है इसमें घबराने की क्या बात है।

अनहोनी होवे नहीं होती होय सो होय तुलसी मन मैदान में, तान पिछोरा सोय, निष्काम होकर काम करते चलो ताकि निष्काम करने की आदत पड़ती जाय।

जो कुछ करें सो गुरु करें, नाम करीर कबीर

हर एक को आशाबादी होना चाहिये संकल्प शक्ति को दृढ़ करते चलो। सारा काम आसानी से आप ही आप होता जायगा। डरो नहीं, मर्द मैदान बनकर काम करो।

तुम तो माता के चरण हो तुमको फिक्र क्या? माँ की दृष्टि लड़के पर अधिक रहती है। वह उसे खिलाती पिलाती है बलबान हृष्टपुष्ट करती रहती है हां जब माँ मल मलकर न्हलाने लग जाती है तो रगड़ हो शरीर दर्द करने लग जाता है। तो तुमको तकलीफ होती है। मल उतर जाने से शरीर हल्का हो जाता है। तब आनन्द भी मिलने लगता है, घबराओ नहीं साथ ही संभाल भी होती है। —महेशचन्द्र स० सम्पादक

निवेदन

मनुष्य बनो के ग्राहकों की सख्या दिनों दिन बजाय बढ़ने के घटती जा रही है चूंकि हमारे लगातार पुस्तकें भेजने के बाद भी ग्राहक बन्धु कई कई साल तक चन्दा भेजना मुनासिब नहीं समझते हैं। और हमें पुस्तक बन्द करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में हम अपने ग्राहक भाइयों से पुनः निवेदन करते हैं कि समय से अपना वार्षिक शुल्क भेज कर एवं नये ग्राहक बनाकर हमें गुरु के प्रवचनों को अधिक से अधिक फैलाने में सहयोग प्रदान करें।

स० सम्पादक

विदुर जी की कथा

विदुर जी जन्म जोधपुर प्राँत के छिवां ग्राम में हुआ था। साधारण कृषक थे। भूमि जोतते बोते और अन्न उत्पन्न करते थे। जो खेती से मिलता साधु सेवा में वितरण कर देते थे। एक वर्ष देश में अकाल पड़ गया। खेत सूख गये। हाहाकार मच गया। भगदड़ पड़ गई। विदुरजी ने सोचा कि अब यहां रहना उचित नहीं है। न अन्न न जल साधुओं को कहाँ से खिलाऊँगा पिलाऊँगा। बिना साधु सेवा से धर्म नहीं बनता। और जहाँ धर्म न बने वहाँ रहना अच्छा नहीं है।

साधु सेवा उनका पवित्र नियम और व्रत था। दिन भर सोचते रहे रात्रि का नींद आ गई। स्वप्न में क्या देखते हैं कि भगवान आये हुए हैं और कहते हैं कि विदुरजी तुम चिंता फिक्र न करो। काम में लगो। जो खेत सूख रहा है तुम केवल उसके घास तिनकों की निराई सफाई कर दो। तुमको २००० मन अन्न मिलेगा। यह प्रसन्न हो गये। प्रातः उठते ही काम में लगे अन्य कृषक इन्हें देखकर हँसी करने लगे। इसका सिर फिर गया है। सूखी भूमि से अन्न लेने चला है। किन्तु इन्होंने एक भी नहीं सुनी। जो आदेश मिला था, उसका सिर और आँखों से पालन किया। खोद खाद सफाई निराई करके सचमुच २००० मन अन्न उत्पन्न हुआ। न जाने चूहे और चीटियों ने एकत्रित किया था। अथवा प्रकृति की किसी गुप्त शक्ति ने यह कार्य कर दिखाया। 'हरि के हाथ निबाहें'। 'साईं तुमको लाज''। हरि का गुण गान करते हुए बड़े मग्न थे।

लोगों ने यह चमत्कार देखा। रेत से तेल और पानी से घी निकला। धूम मच गई। साधू आने लगे। सेवा होने लगी। अनेक व्यक्ति इस घटना को देख सुन कर ईश्वर भक्त हो गये। और अपने जीवन के सुधार में लगे।

जिसने अपना जगत रचा हैं, वह है चतुर सुजाना ।
तू बनता है कर्ता धर्ता, क्यों मूरख दीवाना ॥
सेवक है तो सेवा कर, और तज दे भ्रम कहानी ।
दुनियाँ को विश्वास नहीं है, दुनियाँ है दीवानी ॥
गर्भ वास मैं जिसने पाला, माँ की गोद में डाला ।
वही तेरा रक्षक है प्राणी, उसी से होगा संभाला ॥
सेवक करे रात दिन सेवा, स्वामीपन नहीं धारे ।
सेवक तो सेवा का भूखा, स्वामी ओर निहारे ॥
मेरा मुझ में नहीं है कुछ भी, जो कुछ है सो तेरा ।
सेवा ले, मुझसे, कर मुझको, राधास्वामी का चेरा ॥

मौज (परमदय ल जो महाराज)

एक खेल है संसार का, जिसका नहीं बार पार ।
किसी ने हो शायद उसको पाया, मैं तो गया हूँ हार ।
खोजत-खोजत खो गया, अब अपना बल गया हार ।
बेअन्त है वह दयाल दाता, वह है अहरम्पार ॥
मन, बुद्धि, चित अहंकार से आगे, बेअन्त शब्द भंडार ।
इससे भी परे है कोई ताकत, मिला ना उसका सार ॥
विश्वास था बस एक मेरा, कि वह आया है नर तन धार ।
पूजा उसको गुरु स्वरूप में, पाया आनन्द अपार ।
हुक्म उसके जेरे असर मैंने, कीनी है यह कार ।
कार भी यह खुद नहीं कीनी, करने को था लाचार ।
अब उम्र गुजरी होश आया, मौज की थी सारी कार ।
मौज में रहता हूँ, मौज ही है अब आधार ॥

कल रविवार को नगर मैं मा: मोहनलालजी के मकान पर मासिक सतसंग था। मैं आज चार मास से अपना विचार व्यक्त करता रहा था कि मैं अब २० जनवरी सन १९६० के मासिक सत संग के पश्चात होशियारपुर में मास्टरजी के मकान

पर सत्संग नहीं दूंगा। साधारणतया मित्रगण उसका कारण पूछते थे। नाना प्रकार को अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार अनुमान करते थे।

इस सत्संग में दयाल की माई को जो सत्संग दहली में कराया था उसको टेपरेकोर्डिंग मशीन द्वारा सुनाया गया और फिर मैंने कहा कि ऐ इस संसार के मित्रो ! सज्जनो !! मैंने यह कार्य क्यों किया ? आज वर्षों से इस लाइन में कार्य कर रहा हूँ। दातादयाल का संस्कार था जिसने यह कार्य मुझसे निष्काम निष्पक्ष रूप से करा लिया। बुरा है अथवा भला। इससे क्या लाभ हुआ। क्या हानि हुई। मुझे जानने की आवश्यकता नहीं सेवक सेवा में रहे कभी न मोड़े अंग।

दुख सुख सिर ऊपर सहे, कभी न हो चित्त भंग।

उसके प्रमाण में दातादयाल जी का शब्द जिसके अन्तराल मैंने मौजाधीन कार्य किया सुनिये—

दूजी कथा सुनाऊँ फकीरा, कान इधर ला भाई।
मैं फकीर का प्रेमी सेवक, त्याग हृदय दुचिताई ।।
साधु कोई नौका चढ़ बैठा, संग में नर बहुतेरा।
दुष्ट अभागी देख के साधु, उपजा क्रोध घनेरा ।।
हसो उड़ाया धूम मचाया, मारा सिर पर लाठी।
फूटा सिर साधु का भाई, साजा साज कुठाठी ।।
हुई आकाशबानी तब ऐसी, साधु है मुझको प्यारा।
मैं साधु का सहज सनेही, छन-पल का रखवारा ।।
उलटू नाव डुबोऊं सबको, यह अनर्थ नहीं भावे।
क्यों कोई अपराधी बनकर, मेरा साधु सतावे" ।।
बानी सुनकर साधु दुखी भया, बोला चतुर सुजाना।
'तू दयाल है मेरा साईं, अगम अनाम अमाना ।।

जीव निबल, अज्ञानी मूरख, माया फन्द फंसाने।
यह नहीं समझें सार तत्व को, भूल भरम भरमाने ॥
दया दृष्टि कर इन्हें चेता दे, भाव जला दे, इनका।
मेरे जैसा इन्हें बना दे, दया का देकर किनका ॥
साधु संग का फल नहीं हानी, लाभ साधु संग स्वामी।
मेंट भरम अज्ञान जीव का, चरन सरोज नमामि ॥
फिर आकाशबानी भई दूजी एक वस्तु सुन प्यारे।
ले तेरे छन मात्र की संगति, यह जावें भव पारे ॥
दुष्ट हृदय पछतावा आया, साधु चरन लग रोया।
साधु ने अपने अंग लगाया, पल की दरमति खोया ॥
सुन फकीर हो जा फकीर, अब रूप संभाल ले अपना।
जग के प्राणी तेरे रूप हैं मेंट दे इनका सपना ॥
तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही।
जग कल्याण जगत में आया, परमदयाल सनेही ॥

इस शब्द में दो कड़ी मुख्य हैं :— १ जग के प्राणी तेरे रूप हैं मेंट दे इनका सपना। २—तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही। जग कल्याण जगत में आया परमदयाल सनेही।

समस्त आयु के अनुभव के पश्चात बार-बार विचार आता रहता है कि क्या जगत के प्राणी मेरा रूप हैं और मैं इनका सपना मेंट सकता हूँ ? एक विचार से ठीक है जो मैं हूँ वही समस्त प्राणी हैं। मेरा आदि अन्त जो है वही सबका है किसी को ज्ञान हो अथवा न हो किन्तु वास्तविकता और सत्यता के विचार से हम सब एक ही तत्व से बने हैं। जैसा मैं हूँ वैसे ही सब हैं।

मुझे तो ज्ञात हो गया कि मैं कौन हूँ ? अब इस ज्ञान से मुझे क्या मिला ? सौख्य, शान्ति, चैन, निर्भयता, अचिंतता,

अडोल, भ्रमरहित, आनन्द, प्रसन्नता आदि आदि। इस ज्ञान का प्रचार कि मानव क्या है, दूसरों के मन में जो कुरेद या तपन, चिन्ता, भय, भ्रम है दूर हो सकता है और उन का तपना मिट सकता है।

चूंकि संसार को अपनी तपन, अशान्ति, चिन्ता, भ्रम के दूर करने की वास्तव में आवश्यकता नहीं है। इसलिये बार-बार विचार आता रहता है कि ऐ फकीर इस कार्य को छोड़। इससे क्या लाभ? व्यर्थ सिर खप्पी बकवास, दो-दो घण्टा बोलना, लोगों से मेल मिलाप, जिसका कोई परिणाम नहीं। इसलिये मैंने इस सत्संग में कह दिया कि २० जनवरी के पश्चात होशियारपुर में सत्संग नहीं होगा।

यह सत्य है कि अधिकांश अधिकारी और सरकारी मित्रों के संशय, भ्रम दूर हो गये और वह प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। उनका धार्मिक और पान्थक द्वेष समाप्त हो गया किन्तु वह हैं तो थोड़ा संख्या में। जगत को क्या लाभ हुआ? कुछ नहीं।

इन भावों से विचार होता है कि दातादयाल ने यह आदेश क्यों दिया? जब यह ज्ञान, रहस्य और अनुभव जिससे कि मुझ को शान्ति, परमानन्द आदि मिला कि इससे संसार अथवा जगत का कल्याण कैसे हो इसका उत्तर मुझको कोई नहीं मिलता। केवल एक आशा की किरण झलकती हुई मेरे सम्मुख झलकती हुई आती है वह यह है कि मैंने १५-८-१९४७ को 'मनुष्य बनो' पुस्तक अर्थात् मानवता की पुकार जगत कल्याण हेतु की थी। उस विचार का प्रभाव आज हुआ कि इस समय समस्त भारत में मानवता की चर्चा हो रही है। मेरा ही नहीं प्रत्येक भाव विचार फैला करता है। सन् १९४७ में यह स्वयं सेवक संघ वाले अपने भजनों में गाया करते थे कि हम हिमा-

लय पर्वत पर झण्डे फहरायेंगे और रक्त की नदियाँ बहायेंगे। शब्द तो याद नहीं तात्पर्य यही था कि आज हिमालय में वही हुआ कि रक्त की नदियाँ बही।

देशभक्त इस समय गाते हैं, हम जीयेंगे अथवा मरेंगे प्राणों का बलिदान कर आदि आदि। चूंकि 'जैसा ख्याल वैसा हाल" "जैसी मति वैसी गति" 'जैसी करनी वैसी भरनी" अनिवार्य रूप में होगी। इसलिये अभी मैं निर्णय नहीं कर सका कि मुझे अपना कार्य बन्द कर देना चाहिए अथवा शुद्ध श्रेष्ठ विचार जिससे कि भारत की विचारधारा का सही पथप्रदर्शन हो सके प्रचलित रखना चाहिए अथवा नहीं। फिर भी यदि मैंने शेष जीवन में कार्य किया और कर सका तो जनसाधारण के प्लेट फार्म पर बिना किसी धार्मिक, पान्थिक और सामाजिक पक्ष-पात के मानव जाति के कल्याण के विचार से कार्य करूँगा। अन्यथा नहीं। कठिनाई यह है कि इस युद्ध के संकट के समय देशीय विधान हाँ में हाँ मिलाने के अतिरिक्त और कोई कार्य करने की आज्ञा नहीं देता। और भारत के प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है कि शासन की आज्ञा को भगवान अथवा गुरु का आदेश समझ कर पालन करे। जो नहीं करता वह देशद्रोही व पतित है। प्राकृतिक रूप से भी और शिष्टाचार के अनुसार भी यही उचित है और यह आदि संस्कृति है अथवा सन्त मत में भी यही आदेश है।

गुरु जो कहें सो हित कर मान। गुरु जो कहें सो चित धर ध्यान। क्योंकि शिष्य को सोपानों और पथ का पता नहीं है। किन्तु इसमें यह बात आती है कि गुरु कैसा हो और कौन है? इसका जानना अत्यन्त कठिन है।

जिस प्रकार गुरु के स्थान पर साधारण सत्संगीजन अपनी बुद्धि से स्वार्थवश तथा पक्ष से किसी को मान बढ़ाई देकर गद्दी

पर बिठा देते हैं और फिर वह गुरु अनर्थ करता हुआ इन मुख्य शिष्यों के हाथ में कठपुतली बना हुआ कार्य करता रहता है। तो फिर ऐसे गुरुत्व से क्या भलाई की आशा हो सकती है। यही दशा वर्तमान प्रजातन्त्र में है। प्रजातन्त्र में दोष नहीं है, किन्तु जनता को, जो चुनाव करती है स्वयं सच्ची समझ नहीं है। मानव को स्वयं पता नहीं कि उसको क्या करना चाहिए और वह अपनी इच्छा की पूर्ति करने को क्या सही विधि प्रयोग करे। और इन चुनावों में पारस्परिक द्वेष ईर्षा, घृणा, मत्सर आदि उत्पन्न होते हैं और उनके परिणाम हानिकारिक होते हैं।

राजनीतिक दृष्टिकोण से देश के गुरु महात्मा गाँधी थे यद्यपि आत्मिक दृष्टिकोण से मैं उनको आत्मिक गुरु की पदवी देने को तैयार नहीं हूँ। किन्तु वह राजनीतिक दृष्टिकोण से जाति के बापू अथवा गुरु थे यह शत-प्रतिशत सही है।

वह अपने मुखारबिन्दु से अपने पश्चात श्री नेहरू जी को नियुक्त कर गये और यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि वर्तमान प्रजातन्त्र में महात्मा गाँधी जी के भाव विचार अथवा धार श्री नेहरू जी को हमारे देश का प्रधानमन्त्री बनाये हुए है।

मैं अपनी निज सम्मति दिये बिना गुरु आज्ञा के अन्तर्गत विवश हूँ कि देश श्री नेहरू जी के आदेश पर राजनीतिक क्षेत्र में अक्षरशः चले इसका तात्पर्य डिक्टेटरशिप से नहीं है क्योंकि दोष रहित कोई भी प्राणी नहीं है। इस राष्ट्रीय संकट और युद्ध के समय शासन के संचालकों को त्रुटिपूर्ण क्रोध वादविवाद और उत्तेजना में नहीं आना चाहिए। जिस व्यक्ति में क्रोध और बदला लेने की भावना है वह स्वच्छ मस्तिष्क नहीं रख सकता है अथवा जिसमें किसी की ओर का त्रुटिपूर्ण मोह

अथवा पक्ष है वह भी स्वच्छ मस्तिष्क नहीं रख सकता है।

आप देखले नहीं योग्य से योग्य वैद्य भी अपनी और अपनी सन्तान की चिकित्सा स्वयं नहीं करते हैं। दूसरों से सम्मति लेकर कराते हैं क्योंकि मोह के कारण वह स्वच्छ मस्तिष्क नहीं रख सकते।

सौभाग्य की बात है कि इन परिस्थितियों में भी श्री नेहरू जी का मस्तिष्क स्वच्छ रहा। उन्होंने केवल एक दो बार चीन को निर्लज्ज अथवा धोखा देने वाला कहा हो कभी कोई अनुचित शब्द प्रयोग नहीं किया। यह है स्वच्छ हृदय की विशालता और स्वच्छ मस्तिष्क की धीरता, वीरता और गम्भीरता।

सम्भव है कोई प्रश्न करे कि जिन्होंने उत्तेजनात्मक और क्रोध की वाणी का प्रयोग किया है क्या वह गलत है? मेरा उत्तर है नहीं। प्रत्येक कार्य प्रत्येक के लिये उपयुक्त नहीं है। उनके लिये यह आवश्यक था और है। किन्तु जो लोग देश की बागडोर संभाले हुये है उनके लिये धीर वीर और गम्भीर होना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा वह सही चिकित्सा किसी बात की नहीं सोच सकते। यह भी सम्भव है कि कोई मुझे नेहरू जी का हिमायती अथवा काँग्रेसी समझे गलत हैं। मैं फकीर हूँ फकीर होकर किसी के पक्ष में आना फकीरी अथवा साधुपने की निन्दा है। कोई सोचेंगे कि मैं फकीरी अथवा सन्त मत का पक्ष ले रहा हूँ, यह भी नहीं। जो भी स्वच्छ मस्तिष्क अथवा समदर्शी, सम अवस्था में रहता है वह फकीर है। मैं किसी का भी पक्षपाती नहीं हूँ। इस उपर्युक्त शब्द के अनुसार जो मेरे दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज की पवित्र पुनीत ने जो मुझे आज्ञा जगत के कल्याण की दी उसके

अनुसार कार्य करता हूँ। यदि शासन की कोई अड़चन न हो ता मैं करता रहूँगा अन्यथा मौन हो जाऊंगा और शेष जीवन के दिन अपनी मालिक को याद में बिता कर चला जाऊंगा।

यद्यपि श्री नेहरू जी राजनीतिक दृष्टिकोण से योग्य पुरुष मौज ने भारतवर्ष को प्रदान किये हैं, किन्तु राजनीतिक लाइन अकेली अधूरी है। जब तक देश के सामाजिक, मानसिक और आत्मिक ज्ञान नहीं होगा, देश किसी भी रूप में शान्ति, सुखी व समृद्धशाली नहीं रह सकता है।

चूंकि यह कमी राजनीतिक पार्टियों में भी है चाहे वह काँग्रेसी क्यों न हों इसलिये विवशतःबहुधा उन्नति और सुधार के विचार से कुछ कहना पड़ जाता है जिसकी आज्ञा वर्तमान विधान नहीं देता है।

यदि मेरा कार्य विधान के विरुद्ध हो तो ऐडीटर "मनुष्य बनो" जो मेरे विचारों को प्रकाशित करते हैं न करें। मैं स्वयं भी नहीं चाहता।

क्या लेना है किसी से, क्या देना है किसी को।
करम अपना था मेरा, जो खींच लाया इस तरफ को ।।
हो गरज किसी को, सुने न सुने मुझको है क्या।
मैंने मुकद्दम समझा, गुरु ऋण और निभाया फर्ज को ।।
ऐ दयाल अकाल दाता, ले लो अपने चरन में।
देख लिया जग ख्वाब है, और तूने मिटाया भरम को।
धन दाता दयाल सत्गुरु गुन गाऊं मैं तेरा सदा।
समझ लिया इस जिन्दगी को, पा लिया इस मरम को ।।
अब आखरी अर्ज है, गुम कर लो मुझको जात में।
समझ गया इस, फानी दुनियाँ के मरम को ।।

मासिक सन्देश

परमदयाल सद्गुरू हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वरचन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश

परम प्रिय सत्संगियों !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको सत्संग तथा मानव मन्दिर की गतिविधि के बारे में २९ अक्टूबर तक सूचना दी थी । संक्षेप में, २९ अक्टूबर से २३ नवम्बर तक मैं अधिकतर होशियारपुर में रहा । क्योंकि १८, १९ नवम्बर को परमदयाल जी महाराज के जन्म दिन के उपलक्ष्य में, मानवता मंदिर होशियारपुर में विशाल सत्संग आयोजित किया गया । हाँ ! इसी दौरान में, हमने जयपुर और भीलवाड़ा का दौरा अवश्य किया । हम भीलवाड़ा केवल दो दिन के लिये देहली से रेलगाड़ी के द्वारा गये । भीलवाड़ा के सत्संगी बड़ी उत्सुकता से मेरे वहाँ पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे, क्योंकि भीलवाड़ा के सम्बन्ध में भी पिछली बार दौरे की सूचना गलत छप गयी थी और मैं भीलवाड़ा नहीं पहुँच सका था ।

भीलवाड़ा राजस्थान का बहुत पुराना केन्द्र है । मैं हमेशा भीलवाड़ा सत्संगों के लिए जाता रहा हूँ । इस केन्द्र की विशेषता यह है कि इसे परमदयाल जी के प्यारे कृषक जी महाराज ने स्थापित किया था । यहाँ के सभी सत्संगी प्रेम और भक्ति में सने हुए हैं । परम दयाल जी महाराज के द्वारा नियुक्त श्रीमती गीता सर्राफ और श्रीमती मोहिनी बाई महिला आचार्या है और कई वर्षों से सत्संग की प्रक्रिया चला रही हैं । कृषक जी के सुपुत्र आचार्य भूपेन्द्रमणीजी

तथा उनके सुपुत्र श्री तेजेन्द्रमणीजी गुप्ता भीलवाड़ा केन्द्र की रूहेखाँ है। आचार्य भूपेन्द्रमणी जी को मैंने दो वर्ष पूर्व आचार्य पद पर नियुक्त किया था। वह भीलवाड़ा में सत्संग देते हैं और बहुत सुन्दर शब्द पाठ करते हैं। श्री तेजेन्द्रमणी गुप्ता मेरी दृष्टि में निष्काम कर्मयोग की पराकाष्ठा पर है और अधिकतर मस्ती में रहते हैं। जब भी मैं भीलवाड़ा जाता हूँ, उनकी मस्ती चरमसीमा पर पहुँच जाती है। उनका प्रेम और ज्ञान का मेरे साथ आदान प्रदान विशेष महत्व रखता है। वह न ही केवल भीलवाड़ा के सत्संग केन्द्र को हर प्रकार से सफलता पूर्वक चला रहे हैं, बल्कि वहाँ पर समाज सेवा का कार्य भी कर रहे है। यूँ तो भीलवाड़ा के सभी सत्संगी परिवार सर्राफ परिवार श्रीमती मोहिनी बाई का परिवार, श्रीमती बुद्ध बाई का परिवार और स्वर्गीय श्री हरि भगतजी का परिवार पूर्णतया श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत हैं। इन्हीं के विशेष भक्तिपूर्ण व्यवहार के कारण भीलवाड़ा के और आसपास के नये और पुराने सत्संगी मानवता धर्म पर चल रहे हैं और भीलवाड़ा के वातावरण को पवित्र बना रहे हैं।

मेरे वहाँ पहुँचने से पहले ये परमप्रिय आचार्य कैप्टिन लालचन्द दाँदू से भीलवाडा पहुँच चुके थे। उन्होंने अपने सच्चे सत्संगों से भीलवाड़ा के सत्संगियों को बहुत प्रेरणा दी और उनकी श्रद्धा और भक्ति को मजबूत किया। दो दिन के सत्संगों में जो श्री तेजेन्द्रमणी गुप्ता के घर पर हुए, बाहर से आने वाले और भीलवाड़ा के सैकड़ों सत्संगियों ने लाभ उठाया। इस बार भीलवाड़ा के कुछ प्रतिष्ठित नये व्यक्तियों ने भी नाम-दान लिया। मैं पहले की भाँति कुछ सत्संगियों के घर पर भी गया तीसरे दिन हम प्रातःकाल करीब ७ बजे एम्बैसी कार के द्वारा जयपुर के लिये रवाना हो गये। रास्ते में हम गुलाबपुरा के पास श्री तेजेन्द्रमणीजी के छोटे भाई के निवास स्थान

पर थोड़े समय के लिये रुके। इसी प्रकार दूदू पर हम जलपान के लिये करीब २० मिनट तक रुके। जब मैं दूदू से रवाना होने से पहले कार में बैठा, तो शब्दानन्दजी ने मुझे मेरे जूते पहिनाये। मैंने उनसे पूछा, "कहीं आपने मेरे दाये पैर का जूता बाँये पैर में और बाँये का दाँये पैर में तो नहीं पहना दिया।" उन्होंने मुस्कराते हुए लहजे में कहा, "हजूर मैंने ऐसा नहीं किया।" मैंने उनकी बात पर विश्वास करते हुए, अपने पाँव को ओर न देखा और आराम से अपनी सीट पर बैठा रहा।

ठीक एक घण्टे बाद हमारी गाड़ी मेरे छोटे भाई महाराज कृष्ण शर्मा के घर बंगला नं० १६ सी मोती मार्ग जयपुर पर रुकी। गाड़ी की आवाज सुनकर श्री महाराज कृष्ण और कुछ सत्संगी बाहर आ गये। मैं गाड़ी से उतरा और बंगले में दाखिल हुआ, किन्तु मैं चन्द ही कदम चला था कि मेरे पाँव बहुत दुखने लगे। जब मैंने अपने पाँव पर निगाह डाली, तो वास्तव में क्या देखा? देखा कि मेरा दाँये पैर का जूता बाँये पैर में और बाँये पैर का जूता बाँये में पहना हुआ था। मैंने तुरन्त कहा, शब्दानन्दजी आपने मस्ती में जूते पहनाने में वह भूल कर दी, जिसका मुझे शक था। मेरे छोटे भाई श्री महाराज कृष्ण ने जब यह सुना और उसे पता चला कि शब्दानन्दजी ने दूदू पर मुझे जूते पहनाये थे, तो उन्होंने मुस्कराकर कहा, "यह दुनियावी भूल तो आवश्यक थी क्योंकि जूते पहनाने वाला और पहनने वाला दोनों इस जगत से परे रहते हैं।" मैंने आपको यह बात प्रसंगवश सुनादी है। वास्तव में मालिक का सच्चा प्रेमी इस जगत में रहता हुआ भी भी यहाँ नहीं रहता। वह सभी कर्म करता हुआ भी कर्म के बन्धन में नहीं पड़ता। उसकी अवस्था उस कमल के फूल की तरह होती है जो जल में रहता हुआ भी जल से अछूता रहता है।

यही राधास्वामी मन अर्थात सन्तमन की विशेषता है। यह

रास्ता न सन्यास या ज्ञान का है और न प्रवृत्ति मार्ग है, जिसमें फंसकर जीव कभी भी जन्म मरण के चक्कर से नहीं निकल सकता। पहला रास्ता धीरे २ जगत की सभी वस्तुओं को त्यागकर केवल एक ईश्वर को आधार मानकर, संसार में अनेकत्व के पीछे एकत्व को देखना है। दूसरा रास्ता एक के आगे दाँई तरफ शून्य बढ़ाते २ जगत के फैलाव में फँस जाना है। दूसरे शब्दों में, पहले रास्ते से जीव उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, जिसमें इच्छाओं की कोई कीमत नहीं रहती और दूसरे रास्ते में इच्छाओं की तृप्ति करते २ जीव माया और काल का शिकार बन जाता है। यदि व्यक्ति एकत्व को समझ जाये और मालिक को ही सर्वाधार मानकर, सांसरिक द्वन्द से, लाभ-हानि, सुख-दुख, जय-पराजय में समान रहता हुआ, एकत्व से भी परे चौथे पद की तलाश करता रहे, तो वह मंजिले मकसूद पर पहुँच सकता है। यदि वह सिर्फ एकत्व २ का सुमिरन ही करता रहेगा, तो वो एक से अनेकत्व की ओर खींचा जायेगा। एक और एक ग्यारह हो जायेगे और एक जीरो एक, एक सौ एक हो जायेगे और वह फिर माया जाल में फँस जायेगा। इसलिये जिस साधक को परम लक्ष्य पर पहुँचना होता है, वह एक को भी त्याग देता हैं। इसलिये दातादयालजी महारज ने एक शब्द में कहा है, एक को त्यागो ज्ञान दृष्टि से, सतपद ध्यान जमाओ साधो गुरु शरणगत आओ।

परा भक्ति या गुरु की शरणांगत में आने का मार्ग न तो सन्यास है और न प्रवृत्ति मार्ग है, न वह मायामन है न वह ज्ञानमन है। मायामन का रास्ता बाँई तरफ है। मानामन इंगला नाड़ी की तरफ झुकता है और ज्ञानमन पिंगला नाड़ी की तरफ झुकता है। यद्यपि ज्ञानमन मार्ग में पहुँचना अच्छी बात है और जगत के अन्दर हर वस्तु में एक ईश्वर का अनुभव करना, द्वैत अवस्था के मुकाबले में अच्छा है। फिर भी इस रास्ते में एक के विचार से अनेकत्व के

विचार में पड़ जाने का खतरा होता है। राधास्वामी मत दोनों के बीच का रास्ता अपनाता है और न ही केवल साधक को एक से आगे सतपद की ओर जाने का इशारा करता है, बल्कि उसे अमल के द्वारा चौथे पद पर पहुँचा देता है। इसलिए यह रास्ता ईडा और पिंगला के बीच सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर को ले जाता है और अन्त में सुरत को अपने निजधाम में पहुँचाता है। सर्वाधार राधास्वामी दयाल से मिला देता है। इसमें ज्ञान की अपेक्षा वास्तविक अनुभव पर जोर दिया जाता है। कबीर साहब ने कहा है।

"वह करनी का भेद है, ना ही बुद्धि विचार कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार"

मैंने तो आपको कई बार बताया है कि अभ्यास के द्वारा अन्दर के दर्जो से गुजरते हुये, पराशब्द में लीन हो जाने के बाद भी सदगुरु के सत्संग की आवश्यकता रहती है। गुरु की आज्ञा से वाचक ज्ञान यानि की जबानी जमा खर्च के रास्ते को छोड़कर जब साधक पराशब्द में विलीन होकर समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है, उसे अपने घर का पता तो चल जाता है, लेकिन जब वह समाधि के बाद व्यवहारिक जीवन में उतरता है, तो उसकी रहनी उस प्रकार की समता को स्थिर नही रख सकती, जो उसे समाधि की अवस्था में में और समाधि के दौरान में मिली होती है। उसकी करनी तो उसे कथनी के दर्जे से ऊपर उठा लेती है, किन्तु उसकी रहनी में स्थिरता तभी आ सकती है जब वह सदगुरु के शरणागत होकर उसकी दया से वह गुरु जैसा नहीं बन जाता।

करनी की पराकाष्ठा का बयान करते हुये कबीर साहब ने कहा है—

जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाये।
सुरत समानी शब्द में बाको काल न खाये॥

इसमें कोई शक नहीं कि शब्दाभ्यास से थोड़े ही समय में साधक उस निर्विकल्प समाधि में पहुँच जाता है, जहाँ पर दुख-सुख, लाभ-हानि जयपराजय जन्म-मृत्यु, मोक्ष और बन्ध के सभी झगड़े मिट जाते हैं। किन्तु इस समाधि का प्रभाव थोड़े समय के लिये तो अवश्य रहता है, लेकिन स्थाई नहीं होता। परमदयालजी महाराज ने अनेक बार कहा है कि प्रकाश और शब्द के अनुभव करने के बाद भी वह काम क्रोध आदि से पूरी तरह बच नहीं सके थे। किन्तु उन्हें विदेह मुक्ति की वह अवस्था और अपने निजस्वरूप का वह ज्ञान, तब प्राप्त हुआ, जब उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुये और उन्हें साक्षात परमतत्व मानते हुये सत्संग दिया और उनका ज्ञान अनुभव में बदल गया। उन्हें सत्संगियों के रूप में राधास्वामी दयाल का दर्शन हुआ और वह हर प्रकार के द्वन्द से ऊपर उठकर सहज समाधि की अवस्था में रहने लगे मेरा कहने का मतलब यह है कि परभक्ति का रास्ता साक्षात जीवित सदगुरु को इष्ट मानकर अपने आपको पूरी तरह से उसके सुपुर्द कर देना है। यह रास्ता कठिन भी है और सरल भी है। कबीर साहब ने इस पराभक्ति के मार्ग की व्याख्या करते हुये कहा है।

पिया का मारग कठिन है, ज्यों खांडे की धार।
डगमगे सो गिर पड़े निश्चल उतरे पार॥
पिया का मारग कठिन है, खाड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा॥
पिया का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जाने बापुरी, कहे आँगन टेड़ा॥
जा खोजत ब्रह्मा थके, सुरनर मुनि देवा।
कहे कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु सेवा॥

इसी जीवन शैली को अपनाते हुये, मैं अपने परमगुरु की आज्ञा पालन रूपी सेवा करने के लिये ही, सत्संगों के दौरे पर जाता हूँ।

सदगुरु की सेवा क्या है ? इस विषय पर कभी फिर चर्चा की जायेगी। यहाँ पर मैं आपसे अपने अनुभव को बाँट रहा हूँ और सदगुरु की सेवारूपी सत्संग के दौरे की सूचना दे रहा हूँ।

मैं आपको बता रहा था कि हम भीलवाड़ा से जयपुर पहुँचे। सायंकाल तक श्री हरिवंश लाल होशियारपुर से मैटाडोर लेकर पहुँच गये थे। हमें उसी दिन श्री वी० डी० भटनागर की भतीजी के विवाह में जयपुर में ही सम्मिलित होना था। इस कारण हम रात्रि के ९ बजे देहली के लिये रवाना होकर दूसरे दिन करीब ३ बजे प्रातः काल श्री डी०के० गुप्ता के घर पर पंचशील मार्ग पहुँच गये। कुछ विश्राम के बाद हम मैटाडोर से होशियारपुर के लिये रवाना होकर उसी दिन सायंकाल मानवता मंदिर में पहुँच गये। मैं आपको यह सब सूचना इसलिये दे रहा हूँ कि आपको मैं अपनी व्यस्तता के बारे में पूरी तरह से अवगत करा दूँ। इसमें कोई सन्देह नही कि गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिये दिन रात काम करना पड़ता है। मैं इस काम में ही विश्राम समझता हूँ। उसका कारण यह है कि गुरु की आज्ञा का पालन करने में, मैं अपने आपको खो जाता हूँ और शरीर मन तथा आत्मा से परे की अवस्था एवं चौथे पद को प्राप्त कर लेता हूँ।

होशियारपुर में १८ और १९ नवम्बर को परमदयालजी जन्म दिन की उपलक्ष्य में विशाल सत्संग हुये, जिसमें सैकड़ों सत्संगी दूर-दूर से आकर सम्मिलित हुये। इसके बाद में मैं २३ नवम्बर तक मानवता मंदिर में रहा और सत्संगियों की समस्याओं को सुलझाने के साथ २ लिखने पढ़ने का कार्य करता रहा मुझे २५ नवम्बर को भाग्य माता जी को उनके आपरेशन के बाद अमेरिका से भारत लाने के लिये जाना था। उनके डाक्टर ने कहा था कि उन्हें कम से कम जनवरी के अन्त तक परीक्षणों के लिये डाक्टर की देखरेख में अमेरिका रहना चाहिये। इसके अलावा मेरे अगस्त और सितम्बर के अमेरिका

के दौरे में कुछ काम अधूरे छोड़कर आया था। इन्हीं कारणों से मैं २५ नवम्बर को देहली से रवाना होकर २६ नवम्बर को वाशिंगटन डी० सी० पहुँच गया। यहाँ पर दो दिन रहने के बाद में मुझे और भाग्य माताजी को ऐरीजोना में डाक्टर श्रीडमैन की संस्था में सत्संग देने के लिये जाना था। हम ३० नवम्बर को डा० श्रीडमैन के यहाँ ऐरीजोना पहुँच गये। यहाँ पर दो दिन मेरे विशेष सत्संग हुये, जिसमें उस इलाके के जिज्ञासू लोगों ने भाग लिया। मेरा ऐरीजोना जाने का पहला मौका था। यहाँ पर मेरे सत्संग डा० हरबर्ट परियर की संस्था लोगास विश्वविद्यालय में हुये। यह संस्था भी एक दृष्टि से मानवता धर्म का प्रचार कर रही है और समाधि ध्यान पर जोर देती है। लोगास यूनीवर्सिटी भी भविष्य में मानवता मंदिर के साथ सहयोग करती रहेगी।

हम ३ दिसम्बर को वाशिंगटन डी०सी० पहुँच गये। और ११ दिसम्बर तक वही पर रहे। उसके बाद हम एटलांटा जार्जजिया में अपने छोटे लड़के डा० प्रियदर्शी जेतली के पास विश्राम के लिये गये। हमारा विचार था कि दिसम्बर के अन्त तक हम केवल विश्राम ही करे, किन्तु मुझे इसी दौरान में तीन दिन के लिये क्लीयर वाटर फलोरीडा जाना पड़ा। २० दिसम्बर को ट्रिनीडाड के कृष्ण मंदिर सैन फर्नाडो से सम्बन्धित श्री यतीन्द्र नाथ रामप्रसाद एटलान्टा पहुँचे। उन्होंने आग्रह किया कि मैं उनकी मुँह बोली बहन लीला के सुपुत्र के विवाह पर टिनोडाउ अवश्य जाएँ।

वास्तव में उनकी इच्छा यह थी कि इस बहाने से मैं सैनफर्नाडो के कुछ दिन ठहर का उनके मंदिर में ध्यान समाधि के प्रोग्राम के लिए देख-रेख कर सकूँ। मैंने ५ दिन के लिए ट्रिनीडाड जाना स्वीकार कर लिया। इसी समय मुझे ग्रीनबे से श्री अजीत कुमार की तरभ से ३, ४ दिन के लिए उनके यहाँ जाने का निमन्त्रण आया। इन कारणों से मुझे भाग्य माताजी को छोड़कर पहले ग्रीनबे और

बाद में ट्रिनीडाड जाना पड़ा , मैं आपको यह बताना भूल गया कि दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में, एटलांटा जाने से पहले हम ३, ४ दिन के लिये मेरीलैण्ड में श्री प्रदीप वाही और अनुराधा वाही के घर पर रहे। श्री प्रदीप वाही हमारे होशियारपुर के परमप्रिय सत्संगी श्री रविनन्दा के साले हैं। पिछले दो-तीन वर्षों से उन्होंने रविनंदा के द्वारा कई बार होशियारपुर में मुझे कहलवाया था कि वे एक बार मेरीलैंड में उनके घर अवश्य जाऊँ। श्री वाही का निवास स्थान श्रीमती थैल्मा कार्टर के निवास स्थान के करीब है। इस बार मैंने टेलीफोन के द्वारा अनुराधा को पोटामक मेरीलैंड में श्रीमती थैल्मा के घर से सूचना दी कि मैं उनके निकट मण्टगुमरी विलेज मेरीलैंड में कुछ दिन से निवास कर रहा था। श्रीमती अनुराधा वाही ने तुरन्त कहा, "आपतो हमारे बिल्कुल निकट आ गये हैं। मैं श्रीमती कार्टर का निवास स्थान जानती हूँ। इसलिये मैं स्वयं ही आपको वहाँ आकर अपने घर ले जाऊँगी। आप कुछ दिन के लिये अवश्य हमारे घर को पवित्र करें।" उसकी यह श्रद्धा देखकर हमें उसके निमन्त्रण को स्वीकार करना पड़ा। इसलिए हम ७ दिसम्बर से १० दिसम्बर तक श्री प्रदीप वाही और अनुराधा वाही के घर पर रहे। इसी दौरान में अनुराधा के माता-पिता और परिवार के दूसरे सम्बन्धी हमें पोटामक में मिलने के लिये आये।

अनुराधा के पिताजी ८० वर्ष के होते हुए भी क्रियाशील हैं और रिटायर्ड इन्जीनियर है। वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ २ वह वेदों और धर्म ग्रन्थों का गहरा अध्ययन करते हैं। वह घण्टों तक मेरे साथ वार्तालाप करते रहे और उन्हें धर्म के सम्बन्ध में और वेदों के सम्बन्ध में मानवता धर्म का व्यापक दृष्टिकोण बहुत पसन्द आया। अनुराधा और प्रदीप का यह बुद्धिजीवी परिवार अब मानवता धर्म से सम्बन्धित हो गया है। इसके फलस्वरूप २० जनवरी १९९० को एक अन्य बुद्धिजीवी श्री विनोद प्रकाश के घर पर एक सत्संग आयोजित किया

गया, जिसमें ५० से अधिक भारतीय बुद्धिजीवियों ने भाग लिया। इनमें से अधिकतर बुद्धिवादी हिन्दु धर्म को कट्टरता के विरोधी थे और हिन्दू धर्म को सम्प्रदाय मात्र मानते थे। जब उन्होंने २० जनवरी को मेरा सत्संग सुना और वाद-विवाद के बाद उनको सन्तुष्टी हुई तो उन्होंने आग्रह किया कि मैं जब भी अमेरिका जाऊँ, उनको सत्संग अवश्य दिया करूँ। इस प्रकार प्रदीप और अनुराधा के सम्पर्क से मेरीलैंड में हमारा एक बहुत अच्छा केन्द्र स्थापित हो गया।

७ दिसम्बर को मेरा प्यारा बेटा पवनकुमार शर्मा मस्कट से अमेरिका आया और ३, ४ दिन मेरे साथ रहा। पवन एक बहुत ही सत्श्रद्धा, पराभक्ति से ओत-प्रोत, पूरी तरह से शरणागत मेरा अध्यात्मिक पुत्र है, जो इस समय मस्कट से वैभवशाली जीवन को त्याग करके मानवता मंदिर में आ गया है और मानवधाम के निर्माण में दिन रात जुटा हुआ है। पवन के बारे में कई बार मानव मंदिर में उसके प्रेम और श्रद्धा युक्त अध्यात्मिकता से ओत-प्रोत मुझे और माताजी को लिखे हुये पत्र छप चुके हैं। पवन भी मेरे उन निकटवर्ती परमतत्व के अंशों में से एक है, जो इस जन्म में अपने उद्धार के साथ २ मानव मात्र के कल्याण के लिये, इस सीधे सच्चे मार्ग पर चलकर दूसरों के लिए मिसाल कायम कर रहे हैं और जो आगे चल कर जैसे हो जायेंगे। वास्तव में मेरे प्यारे परमप्रिय सत्संगियों! आप सभी मेरा अंश हो मेरे सदगुरु के रूप हो, और मेरा इष्ट हो। आप भी निश्चित रूप से मेरे जैसे हो जायेंगे क्योंकि आपका प्रेम अगाध हैं, आपका विश्वास दृढ़ है और आपकी श्रद्धा अटल है। जो जिसको सच्चे दिल से प्यार करता है और पूरी तरह से अपने आपको उसके सुपुर्द कर देता है वह उस इष्ट जैसा ही हो जाता है। प्रेम की यह विशेषता है कि प्रीतम और प्रेमी अन्त में एक दूसरे में ओत-प्रोत हो जाते हैं। उनका यह एक होना केवल आत्मा तक ही सीमित

नहीं होता, बल्कि शरीर और मन में भी यह एकत्व घर कर जाता है। उदाहरण स्वरूप विष्णु सतोगुणी है और सतोगुण का रंग सफेद होता है। शकर तमोगुण प्रधान है और तमागुण का रंग काला होता है। किन्तु शिवजी की मूर्ति सफेद पत्थर की बनायी जाती है, जबकि विष्णु की मूर्ति काले रंग के पत्थर की बनी होती है। इसका कारण यह है कि शंकर विष्णु को इष्ट बनाकर उनसे प्रेम करते हैं और उनका ध्यान करते रहते हैं। इसी प्रकार विष्णु शंकर को इष्ट बनाकर उनसे प्रेम करते है और उनका निरन्तर ध्यान करते रहते है। परिणाम यह हुआ कि शंकर विष्णु के प्यार से ओत-प्रोत होकर सफेद हो गये और विष्णु शिव से प्यार करते २ काले हो गये। इसी प्रेम के रिश्ते को कबीर साहब ने नीचे दिये गये दोहे में व्यक्त किया है–

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखकर मैं गयी मैं भी हो गयी लाल ।।

इन्हीं कारणों से मैं इस मासिक सन्देश के जरिया, लगातार आपसे सम्बन्धित रहना है। मेरी प्रेम की धारा इन शब्दों के माध्यम से आपकी ओर बहती है और इस शब्द ब्रह्म को आप अपने अन्तर में महसूस करते हैं और इस मासिक सन्देश को पढ़कर आनन्द का अनुभव करते हैं, उस समय आपकी यह प्रेम से ओत प्रोत आनन्द की धार मेरे पास पहुँचती है। इसी प्रेम के आदान-प्रदान से भी एक दिन आप, आप न रहेंगे, मैं, मैं न रहूँगा और तू तू मैं मैं का झगड़ा समान हो जायेगा। इसलिए मेरे कहा है कि आप भी मेरे जैसे हो जायेंगे। इस मासिक सन्देश को संक्षिप्त बनाने के लिये आपको अमेरिका के दूसरे दौरे के सम्बन्ध में तिथियों के आधार पर नहीं बल्कि अनुभव के आधार पर इस शब्दों के द्वारा सूचना दे रहा हूँ। २१ से २५ दिसम्बर तक मैं श्री अजीत कुमार के यहाँ ग्रीनबे बिस्कोन्सन में रहा। मेरा प्यारा बेटा पवन भी इन दिनों मेरे साथ रहा। अजीत कुमारजी के सभी बच्चे सिवाय राजकुमार के इन्हीं दिनों ग्रीनबे में

आये और हररोज घरेलू सत्संग होते रहे। दिन में मैं उनकी शंकाओं को दूर करता रहा। हमारे भारतीय नवयुवक विशेष कर वे बच्चे जो शुरू से अमेरिका के वातावरण में पले हैं, इसाई धर्म से प्रभावित हो जाते है, क्योंकि उन्हें अपने धर्म का ज्ञान नहीं होता। किन्तु जब उन्हें सत्संगों में पता चलता है कि सत सन्तलन धर्म, सन्त मत एवं राधा स्वामी मत बहुत व्यापक है और उसके अन्दर सभी धर्मो का समावेश है, तो वे भ्रम से बच जाते हैं और सच्चे रास्ते पर आ जाते हैं। अमेरिका में रहने वाले भारतीय परिवारों के लिये यह आवश्यक है कि उनकी आगे की पीढ़िया पूरी तरह से हिन्दु धर्म से परिचित हो ताकि वे आगे चलकर भटके नहीं और अपनी सनातन धर्म की जड़ों में जमे रहे। इसलिये परमदयाल जी ने कहा था कि भारत में ऐसी पाठशालायें और संस्थाऐं होनी चाहिये जिसमें विदेशों में बसे हुए परिवारों के बच्चे भारत में रहकर पढ़ाई के साथ २ अपनी संस्कृति में भी रंग जायें धाम कभी न कभी कदम उठायेंगे।

२७ दिसम्बर को मैं बापिस भाग्य माता जी पास एटलान्टा में प्रियदर्शी के घर पहुँच गया। माताजी यहाँ पर अकेली रह रही थी क्योंकि प्रियदर्शी १० दिन के लिये अपने मित्रों को मिलने के लिये हवाई चला गया। हवाई अमेरिका पश्चिम में कैलीफोर्निया से करीब ३ हजार मील दूर प्रशान्त महासागर में छोटे २ द्वीपो से मिला हुआ, अमेरिका का प्रान्त है। यह बहुत ही सुन्दर द्वीपों का समूह है और लोग दूर २ से यहाँ पर आकर शान्ति का अनुभव करते हैं और सुखमय जीवन बिताते हैं। प्रियदर्शी को २ या ३ जनवरी को वापस आना था। मैं २९ दिसम्बर तक भाग्य माताजी के साथ रहा और उसी दिन प्रातःकाल ग्यारह बजे हवाई जहाज से ट्रिनीडाड के लिए रवाना हो गया। मैं पैन अमेरिकन एयरलाइन के द्वारा मायामी होता हुआ रात को ग्यारह बजे ट्रिनीडाड के पोर्ट ओफ स्पेन हवाई अड्डे पर पहुँचा। मेरे परमप्रिय विश्वामित्र और श्री यतीन्द्र रामप्रसाद

वहाँ पर स्वागत के लिये मौजूद थे ।

वहाँ पर मैं ३ जनवरी १९९० तक रहा । इन दिनों में भी मैं अपने परमप्रिय विश्वामित्र गराज के घर पर ही रहा । प्रातःकाल कृष्ण मंदिर में पहले की भाँति समाधि ध्यान का भी सिलसिला चलता रहा । लोग बड़े चाव से हर रोज प्रातःकाल ५ से ७ बजे तक काफी संख्या में अभ्यास करने के लिये आते रहे । जैसाकि मैंने पहले आपको बताया है, सैनफर्नांडो के कृष्ण मंदिर से सम्बन्धित हिन्दू और विश्वामित्रजी का परिवार, श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत है । इनके साथ-२ पोर्ट ओफ स्पेन में भी श्री भीमसेन गराज तथा उनका परिवार सत्संगी मानवता धर्म के अनुयायी है । श्रीमती लीला के सुपुत्र का विवाह ३१ दिसम्बर को निश्चित था । बरात के रवाना होने से पहले श्रीमती लीला और उनके पति डा० रामनरायन राम प्रसाद के घर पर प्रीतिभोज हुआ और दुल्हा को भारतीय परम्परा के अनुसार मुकुट आदि पहनाकर सजाया गया और ब्राह्मण के द्वारा सनातन धर्म की रीति के अनुसार पूजा आदि करायी गयी । तीन सौसाल से भी अधिक समय से इस देश में बसे हुये हिन्दुओ ने कर्म-काण्ड की परम्परा को ज्यों का त्यों रखा हुआ है । मुझे उस समय बहुत प्रसन्नता हुई, जब सेहरावन्दी के समय, आई महिलाओं ने अच्छे स्वर और लय में वही गीत और सोहले गाये, जो आज तक उत्तर प्रदेश में विवाह के समय गाये जाते हैं । मुझे प्रसन्नता इसलिये हुई क्योंकि गाने वाली महिलाऐं हिन्दी के गीत तो गा रही थी, किन्तु वह हिन्दी भाषा बिल्कुल नहीं जानती थीं । उनकी मात्र भाषा अंग्रेजी है । मेरे प्यारे सत्संगियो ! भारतीय हिन्दुओं को इस बात पर गर्व होना चाहिऐ कि सदियों पहले से विदेशों में बसे हुये हमारे भाईयों ने हर दृष्टि से सत सनातन धर्म को एवं भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा हुआ है, और उसको पूरी तरह से जीवन में उतार रहे हैं मैंने पहले भी आपको बताया था कि कृष्ण मंदिर में उत्सवों पर और

सत्संगों पर, किस प्रकार हजारों हिन्दू पुरुष, स्त्रियाँ बच्चे और बच्चियाँ नये और सुन्दर कपड़े पहनकर बड़े चाव से सत्संग और पूजा आदि में सम्मिलित होते हैं, आरती करते हैं और सत्संग देने वाले आचार्य और गुरु के पाँव छूकर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। ऐसे दृश्यों को देखकर एक तरफ तो प्रसन्नता होती है, दूसरी तरफ खेद भी होता है क्योंकि हमारे अपने देश में, अपने इस वैज्ञानिक और आध्यात्मिक धर्म के सम्बन्ध में कुछ ही सम्प्रदायों के अनुयाइयों को छोड़कर जनसाधारण में इतना उत्साह नहीं है, जितना मैंने ट्रिनीडाड में देखा। अत्यन्त खेद की बात यह है कि भगवद गीता और रामायण जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थों में ईश्वर भक्ति के मार्ग को तिलांजलि देकर मूर्ख हिन्दू कबरों पर मरे हुए पीर फकीरों को पूजते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि उनकी इच्छा पूर्ति कब्रों में गढ़े हुए मुर्दे नहीं करते बल्कि उनका अपना ही विश्वास करता है। परमतत्व अवतार भगवान राम और भगवान कृष्ण जैसे सत्पुरुषों द्वारा दी गई आध्यात्मिक शिक्षा को नजर अन्दाज करके झूटे और पाखन्डी उन पीरों और स्वार्थी गुरुओं के पीछे लगे हुए हैं और इस भ्रम में लुटे जा रहे हैं कि उनके गुरु उन्हें मरते समय सत लोक ले जायेंगे।

इसमें कोई शक नहीं कि सच्चे सन्त मत में और सनातन धर्म में कोई भेद नहीं है। इस सच्चाई को महर्षि शिवब्रत लाल दातादयाल जी ने और परम सन्त परम स्पष्ट किया है और उसी परम्परा में, मैं अपने अनुभव के आधार पर पराभक्ति की व्याख्या कर रहा हूँ और यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि सत सनातन धर्म और सन्तमत या राधास्वामीमत या मानवता धर्म एक हैं। इनमें किसी प्रकार की भिन्नता या विरोध नहीं है।

मैं आपको बता रहा था कि सेहरा बन्दी का दृश्य बहुत सुन्दर था। स्त्री पुरुष युवा लड़के और लड़कियाँ उसी प्रकार सुन्दर से सुन्दर वेशभूषा में सजधज कर विवाह उत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे, जिस

प्रकार भारत में होता हैं। बारात के रवाना होने से पहले जो प्रीति-भोज दिया गया वह बहुत स्वादिष्ट था। दाल पूरी सब्जी और हलुआ केले के पत्तों पर परोसा गया। मैं समझता हूँ कि हमें होटलों के अन्दर शादी ब्याह पर लाखों रुपये नष्ट करके, प्लेटों आदि में खाना खिलाने के बजाय पत्तलों पर खाने की परम्परा को वापस लाना चाहिए। मुझे यह देखकर खेद होता है कि खासकर धनवान हिन्दू परिवार शादियो पर नयी २ अनुचित परम्परायें चला रहे हैं। सच तो यह है कि ऐसे विवाह उत्सव आध्यात्मिक प्रेममय न होकर एक औपचारिक और आडम्बर बन गये हैं, यही कारण है कि अब हिन्दुओं में विवाहित जीवन में प्रेम के अभाव के कारण तलाक की परम्परा जोड़ पकड़ रही है।

सेहराबन्दी के तुरन्त बाद दूल्हा ने मेरे से तुरन्त आर्शीवाद लिया, बाजे बजे और ढोल नगाड़े बजे और पुरानी भारतीय परम्परा के अनुसार बारात का जलूस बन गया। हाँ यह तो सत्य है कि रथों के स्थान पर मोटर कारों का प्रयोग किया गया, क्योंकि ट्रिनीडाड में भी हर हिन्दू घर में कम से कम एक कार अवश्य होती है, और बरात कम से कम ५० मील दूर वरवधु के घर जाना था। एक प्रसन्नता की बात यह है कि पंजाब से गुरु होकर सभी प्रान्तों में, जो बारात में अंग्रेजी ढंग से नाचने की बुरी प्रथा सभी प्रान्तों में फैल गयी है अभी तक ट्रिनीडाड में यह बीमारी नहीं आयी। ऐसी अनुचित परम्पराओं को जन्म देकर हम विवाह की उस पवित्रता पर आघात कर रहे हैं, जिसके आधार पर दो आत्माओं का विवाह जन्म जमान्तर के सम्बन्धों पर निर्भर माना जाता है। बारात का यह जलूस आधे घण्टे के अन्दर वरवधु के घर पर पहुँचा और उसके पहुँचने से पहले बाजे तथा ढोल बजाने वाले मौजूद थे, मुझे दूल्हा की कार में बिठाया गया था और वर-वधू के परिवार को बता दिया गया था मेरा दूल्हा के घर से गुरु शिष्य का सम्बन्ध था। वधू के पिता ट्रिनीडाड के

विख्यात धर्माचार्य श्री कृष्ण महाराज थे । उन्होंने मेरा विशेष स्वागत किया । श्री कृष्ण महाराज एक वयोवृद्ध विद्वान पंडित और हजारों हिन्दुओं के पुरोहित और गुरु हैं । उनसे मिलकर मुझे विशेष आनन्द का अनुभव हुआ ।

बहुत बड़ा सुन्दर पंडाल हर प्रकार से सजा हुआ था और हजारों लोग वरवधू की ओर से स्वागत के लिये कुर्सियों पर बैठे हुये थे, जहाँ पर बराती भी बैठ गये । सप्तपदी की रीति से पहले, वर और वरवधू को एक सुन्दर मंदिर में ले जाया गया और पूजा करायी गयी । विवाह पूरी तरह से वैदिक पद्धति के अनुसार सम्पन्न हुआ । मैंने आपको यह सूचना विस्तार पूर्वक इसलिये दी है, ताकि मेरे प्यारे सत्संगी सनातन धर्म की अच्छी परम्पराओं का आदर करें और अपने जीवन को सुन्दर और सुचारू बनाये ।

मैं ४ जनवरी प्रातःकाल ट्रिनीडाड से रवाना होकर उसी दिन सायंकाल पबेण बाशिंगटन डी०सी० पहुँच गया । ५ जनवरी को ही मैं सैनफान्सीसको कैलीफोर्निया के लिये रवाना हो गया क्योंकि वहाँ पर श्री विनोद शर्मा और उनकी पत्नी कुसुम ने आग्रह किया था कि मैं कम से कम दो दिन उनके पास रहूँ । आपको याद होगा कि कि पिछली बार जब मैं सैबफ्रन्सिसको गया था, तो इनके घर पर नहीं ठहर सका था । यह दम्पत्ति और उनकी सुपुत्री मोदिका आदिमपुर के श्री रामदेव दत्ता से सम्बन्धित है और भगाध श्रद्धा और विश्वास रखते हैं । ७ जनवरी को प्रातः काल मैं सानफ्रन्सिसको से रवाना होकर मेरे परमप्रिय डा० सुरेश लोढा के पास सैन्टामरिय पहुँच गये । दो दिन यहाँ पर ठहरने के बाद मैं ९ जनवरी को लोसैन्जलस पहुँच गया । यहाँ पर पवन शर्मा अपने भाई रोहित शर्मा के पास आया हुआ था, इसलिये मैं कुछ समय के लिये रोहित के घर ठहरा । एक रात और दिन में डा० विद्यासागर कौशिक के घर रहा और १० जनवरी की रात्रि को परमप्रिय अश्वनी शर्मा के घर से

क्लीवलैंड के लिये हवाई अड्डे से रवाना होकर ११ जनवरी प्रातः काल अपने बड़े सुपुत्र डा० अरुण जेतली और उनकी पत्नी मन्जू जेतली के घर पहुँच गया। इस बार भी व्यस्तता के कारण मैं केवल एक दिन यहाँ रहने के बाद १२ जनवरी को एटलान्टा जोजिया पहुँच गया। भाग्य माताजी यहाँ पर मौजूद थीं। हम १८ जनवरी तक प्रियदर्शी के पास एटलाँटा जोर्जजिया में रहे। इसी दौरान में मैं एमरी विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा० पोलकोर्ट राइट से मिला जिन्होंने श्री गणेश पर अंग्रेजी में एक पुस्तक लिखी है जो अमेरिका में सर्वप्रिय हो गयी है। डा० कोर्ट राइट मेरी पुस्तकों के कारण और धर्मकोष में प्रकाशित मेरे लेखों के कारण पहले से ही मुझे जानते थे। मैं और भाग्य माताजी घण्टों तक उनके कार्यालय में उनसे बातचीत करते रहे। जब वह हमें नीचे टैक्सी तक छोड़ने आये, तो टैक्सी के चलने से पहले उन्होंने हाथ जोड़कर हमें सम्बोधित करते हुए कहा, 'जय गणेश'। हमने भी उन्हें 'जयगणेश' कहा और दर्शी के घर पर पहुँच गये। १९ जनवरी को हम वाशिंगटन डी०सी० पहुँचे और २० जनवरी को श्री विनोद प्रकाश के घर पर सत्संग देने के बाद हम २४ जनबरी तक उसी इलाके में रहे। २४ जनवरी को न्यूयार्क से रवाना होकर हम २६ जनवरी प्रातःकाल नयी दिल्ली पहुँच गये। विदेशी दौरे की सूचना इस मासिक सन्देश के लिये, यहाँ तक ही पर्याप्त रहेगी। इन शब्दों के साथ, मैं आपको इस महीने की सदभावना भेजता हूँ। मैंने आपको श्री विनोद प्रकाश के घर पर सत्संग की सूचना इसी सन्देश में पहले ही दे दी है, इस लिये अन्त में मैंने केवल उसका जिक्र किया है। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि मेरे इस नये ढंग से प्रेरणा ले और आपके लोक और परलोक दोनों बन जायें। आप लौकिक जीवन का सुख भोगकर अंत में परमधाम के विश्राम को प्राप्त हो, यह मेरा दिली आशीर्वाद है।

सबको राधास्वामी!

आपका फकीरमय मानव

—:०:—

[माह जून के पृष्ठ २१ से आगे, राधास्वामी योग, तीसरा भाग]

स्वयं ही अनेकता का रूप है। अनेकता में रुचि होने के स्वभाव का परिणाम यह होता है कि भ्रम और बेचैनी हो जाती है। राधास्वामी मत कहता है कि तुम अपना मन केवल गुरु में लगाओ। मन उस व्यक्ति को देना चाहिए जिसमें काम क्रोधादि न तो राजसिक वृत्तियाँ हों और न पशुवत वृतियाँ ही हों। यदि गुरु को दिल दिया जायेगा तो उपरोक्त वृत्तियों से छुटकारा मिलेगा। दूसरी तरह यह सम्भव नहीं है। यदि स्त्री को दिल देते हो तो वह आसुरी और राजसी वृत्ति होगी और यदि ऐश व आराम का ख्याल करते हो तो वह तामसी वृत्ति होगी। यदि अधोगामिनी वृत्तियों से सम्बन्ध रखते हो तो पशुता आयेगी। दुनियां की सृष्टि में चाहे वह कोई क्यों न हो दोष-रहित नहीं है। भाई-बन्धु, सरकार दरबार सब में ही दोष है। ये सब के सब चंचल स्वभाव के होते हैं। इनमें से एक भी तो ऐसा नहीं है जो काम क्रोधादि या स्वार्थ से रहित हो। फिर उनके मेल से तुम में भी क्रोधादि और स्वार्थपना आयेगा या नहीं ? 'जैसी माया वैसो बुद्ध जैसी संगत वैसो सुधि। जैसा सोच, वैसा विचार जैसा ढंग तैसा व्यवहार" ॥ अधिक क्यों कहा जाय, इतना ही पर्याप्त है। मनन करना तुम्हारा काम है हमारा काम तो केवल ख्याल देने और दिलाने का है।

परम सन्त कबीर साहब इसी विषय को अति स्पष्ट रूप और स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार वर्णन करते हैं।

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिये जो गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान॥
गुरु से ज्ञान जो लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बह गये, राख जीव अभिमान॥
गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
चार लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्हीं दान॥

पहिले दाता शिष भया,जिन तन मन अरपा सीस ।
पीछे दाता गुरु भये, जिन नाम किया बखशीस ।।

सत्त नाम के पटतरे देने को कछु नाहिं ।
कहाँ लग गुरु सन्तोषिये,हवस रही मन माहिं ।।
मन दिया जिन सब दिया, मन के संग शरीर ।
अब देने को क्या रहा यों कथ कहें कबीर ।।
तन मन दिया तो क्या हुआ,निज मन दिया न जाय ।
कहें कबीर ता दास सों, कैसे मन पतियाय ।।
तन मन दिया आपना, निज मन ताके संग ।
कहें कबीर निर्भय भया, सुनु सतगुरु परसंग ।
निज मन तो नींचा किया,चरन कमल की ठौर ।।
कहें कबीर गुरु देव बिन, नजर न आवे और ।।
तनमन दिया तो भल किया,सिर का जासी भार ।
जो कबहूँ कह मैं दिया, तो बहुत सहेगा मार ।।
तन मन ताको दीजिये, जाके विषया नाहिं ।
आपा सब ही डार के, राखे साहब माहिं ।।
गुरु की आज्ञा आवहिं, गुरु की आज्ञा जाय ।
कहें कबीर सो सन्त जन, आवागमन नसाय ।।
लाख कोस जो गुरु बसें, दीजे सुरत पठाय ।
शब्द तुरी असवार होय छिन आवे छिन जाय ।।
गुरु जो बसें बनारसी, शिष्य समुन्दर तीर ।
एक पलक बिसरे नहीं, जो गुन होय शरीर ।।
गुरु माथे से ऊतरे, शब्द बिहूना होय ।
ताको काल घसीटिहें रोक न सक्के कोय ।।

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं ।
कहें कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाहिं ।।

जिन मति रासा नाम सों, नजर न आवे दास।
कहें कबीर सो क्यों करे, राम मिलन की आस ॥
यह मन की सेवा है।

—:o:—

छयालीसवां वचन

गुरु कहते किसको हैं ?

हमने वयालीसवें वचन में गुरु के साधारण पहिचान के सम्बन्ध में कुछ कह तो दिया है परन्तु वह पर्याप्त नहीं है। उस पर और भी प्रकाश डालने की आवश्यकता है ताकि जो लोग राधास्वामी मत में सम्मिलित हो गये हैं वह किसी प्रकार के धोखे व भ्रम में न पड़ें। दुनियाँ में सर्वत्र धोके व छल छिद्र का जाल बिछा हुआ हैं। ऐसा न हो कि मत, मजहब पन्थ और सम्प्रदाय बन्धन के कारण बन जाय नहीं तो मुक्ति केसे होगी। पन्थ का उद्देश्य मुक्ति दिलाने का हो परन्तु जब वही गले का हार और बन्धन की जंजीर बन गया तो फिर उससे अधिक बुरा परिणाम क्या हो सकता है ? इस कारण मनुष्य को उदार हृदय, विशाल दृष्टि और उच्च विचार वाला बनने की अत्यन्त आवश्यकता है। गुरु वास्तविक रूप से किसी मनुष्य विशेष का नाम नहीं है और न शरीर को गुरु कहा जा सकता है। गुरु वस्तुत आध्यात्मिक आदश का नाम है। आदर्श सद मानसिक होता है। शरीर में बन्धन की हालत है। शरीर किसी भी दशा में शारीरिक दोषों से मुक्त नहीं होता शरीर दुर्बल, दोषयुक्त और नाशवान है इस दृष्टि से शरीर गुरु समझ जाने के योग्य नहीं है। जो लोग गुरु करते या गुरु में श्रद्धा विश्वास रखते हैं वह शरीर के ध्यान से ऊंचे रहते हैं।

हाँ ! गुरु स्वरूप [ज्ञात] को वह अपने विचार ध्यान और विश्वास को केन्द्र बनाकर उसकी सहायता से शनैः शनैः उस मानसिक आदर्श को प्राप्त करने के इच्छुक व प्रयत्नशील रहते है जो उनके अपने मन में विद्यमान है और जिसका उनको ज्ञान नहीं हैं । गुरु के वचन से, गुरु के संग से और गुरु के प्रेम करने से उनके हृदय के परदे [आवरण] एक-एक करके हटते जाते हैं और तब वह उसी ख्याली गुरु [आदर्श] को अपने ही अन्दर देखने लगते है ।

गुरु नाम है पूर्ण व पूर्णता का, जिसमें सीमितपना नहीं है बाहरी गुरु की सहायता और कृपा से उसकी शनैः शनैः समझ आने लगती है ।

अभिप्राय भक्ति और ज्ञान का यही है कि मनुष्य पूर्ण हो जाय । पूर्ण ही सच्चिदानन्द है । इस पूर्ण की प्राप्ति एक दम से तो होती नहीं । प्रारम्भ में कोई न कोई आदर्श की मूर्ति बनानी पड़ती है । यही मूर्ति गुरु है । इसी मूर्ति अर्थात् गुरु का ध्यान इतना विस्तृत हो जाता है कि उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता और वह दृष्टि गोचर होने वाला और दृष्टि में न आने वाला दोनों ही प्रतीत होने लगता है और जितना ही इस प्रतीति में हम मग्न और लीन हो जाते हैं उतना ही हम पूर्ण होने के अधिकारी बनते हैं ।

:०—:०

सैंतालीसवाँ वचन

निस्स्वार्थपना (बेगरजी)

यदि तुम स्वार्थ रहित काम करने की इच्छा रखते हो तो किसी ऐसे प्राणी से सम्बन्ध जोड़ो कि जिसमें निस्स्वार्थपना है । स्वार्थी लोगों से मिलकर हम में स्वार्थपने का दोष आ

गया है और हम दिनों दिन स्वार्थी बनते जाते हैं। जिस तरह स्वार्थियों का संग हमको स्वार्थी बनाता है वैसे ही निस्स्वार्थ पुरुष की समीपता का प्रभाव निस्स्वार्थता का गुण उत्पन्न करने लगेगा। निस्स्वार्थता का गुण अपने अन्तर में उत्पन्न करना प्रगट रूप से स्वयं ही एक स्वार्थ ज्ञात होता है परन्तु चूँकि आदर्श निस्स्वार्थता है इस कारण से उसे स्वार्थ नहीं कहते।

हम हर वस्तु और प्राणी के साथ स्वार्थ का प्रश्न नहीं करते है क्योंकि दुनियाँ के हर व्यवहार में स्वार्थ है इसी प्रकार निस्स्वार्थता का प्रश्न करने से जीवन निस्स्वार्थ भी बनता है। सर्वत्र हमको स्वार्थ ही स्वार्थ दृष्टिगोचर होता है, परन्तु जब हम निस्वार्थ गुरु की सेवा करने लग जाते हैं तो उनके निस्वार्थ भाव आप ही आप उन जैसा बनाने लगते हैं। फिर दृष्टि के बदल जाने से दुनियाँ के सब दृश्यों में निस्स्वार्थता ही दिखायी देने लगती है, सूर्य चांद, सितारे, पानी वृक्ष आदि सब के सब निस्स्वार्थ रूप से काम करते हुए प्रतीत होते हैं।

गुरु की सेवा में किसी स्वार्थ को सम्मिलित न रखो तब यह गुण अपने आप ही तुम में उत्पन्न हो जायेगा।

गुरु से मुक्ति तक की इच्छा न करो नहीं तो वह सम्बन्ध भी निस्स्वार्थ न बना सकेगा। स्वार्थ का प्रश्न अहंकार में है। इस अहंकार को गुरु के ध्यान से मेट देना है। जब अहंकार न रहेगा तुम स्वयं निस्स्वार्थ हो जाओगे और यही निस्स्वार्थता असली मोक्ष और मुक्ति है।

स्वार्थ तो यों ही सर्वत्र सम्मिलित रहता है। कोई ऐसा स्थान भी तो बताओ कि जहाँ अपना कोई स्वार्थ न रहे। तब उसके ध्यान से हो निस्स्वार्थपना आता जायेगा।

सेवा निस्स्वार्थ हो। प्रेम निस्स्वार्थ हो। सम्बन्ध निस्वार्थ

हो तब निस्स्वार्थता के भाव उभरेंगे और जीवन सुखमय होता जायेगा। दुनियाँ में यद्यपि सब प्राकृतिक शक्तियाँ निस्स्वार्थ काम कर रही हैं मगर उनका ध्यान हमको नहीं होता। इस-लिये हम ऐसी वस्तु को ढूँढ़ते हैं जो हमारी जैसी शक्ल व सूरत रखती हुई भी निस्स्वार्थता का मूर्तिमान चित्र हो और उसी को हम गुरु कहते हैं।

यह बात प्रारम्भिक अवस्था ने हमारी समझ में नहीं आती आगे चलकर समझ में आयेगी।

निस्स्वार्थता ही की प्राप्ति परमार्थ है। और यह परमार्थ मानसिक विकास के दर्जों के दृष्टिकोण से कई श्रेणी का होता है।

तरुवर, सरवर, सन्त जन, चौथे बरसे मेंह।
परमारथ के कारणे, चारों धारे देह॥

—०—

अड़तालीसवां वचन

कर्म का त्याग

कर्म के छोड़ने को कर्म का त्याग नहीं कहते बल्कि कर्म के फल की कामना न रखना असली तौर पर कर्म का त्याग है। और यही असली कर्म काण्ड है।

इस त्याग से हमको सब कुछ मिल जाता है और सब हमारा ही हो जाता है। यही त्याग का अभिप्राय है। खराबी की जड़ कामना में है। कामना ही संकीर्ण और दोषयुक्त बनाती है। जो आस लगाते हैं वही निराश किये जाते हैं। जिसको आस ही नहीं है, उसको निराशता का खटका क्यों होने लगा।

आस आस सब जग बंध्या रहे उर्द्ध लपटाय।
गुरु आसा पूर्ण करें, सकल आस मिट जाय॥

कामना की जड़ काटना ही त्याग है। जब तक कामना है, मन रूपी पक्षी को ऊंचा नहीं उड़ने देते अर्थात् उसमें उच्च विचार नहीं आते और कामनायें मन रूपी पक्षी के बाल व पंख को बांधे रखती है और उसको संकोर्णता के जाल में फंसाये रखती हैं।

इस कारण पक्षी तरह दूसरा जन्म धारण करो। पहला जन्म तो आसा के साथ होता है। यह कैद (बन्धन करने वाला अण्डा है। दूसरा जन्म भैरवी है जिसमें गति आती है। उसकी गति अत्यन्त सुन्दर होती है और वह गति हमको धुरपद की तरफ ले जाती है। आसा, भैरवी और धुरपद यह राग है। बहुत सवेरे के समय आसा गाया जाता है और इसकी तह में भैरवी का राग सम्मिलित है। जब यह भी नहीं रहता तो धुरपद की बारी आती है।

राग छः प्रकार के होते हैं और यह छः चक्रों के गति के प्रादुर्भाव हैं। सातवाँ आदर्श है। धुरपद का अभिप्राय आदर्श से है। पक्षी आसा के अन्डे में फंसा हुआ रहता है जो सुखदायक अवस्था नहीं है। अन्त में जब वह पर फड़फड़ाता हुआ अन्ड को तोड़ देता है, तब खुली जलवायु उसको प्राप्त होती है। यही कारण है उसके द्विजन्मा कहलाने का है।

मनुष्य में भी वह मनुष्य द्विजन्मे कहलाते हैं जो आस के अण्डे को तोड़कर निष्कामता और निस्स्वार्थता का जीवन व्यतीत करते हैं। दूसरों को द्विजन्मा कहना भूल है।

यह दूसरा जन्म गुरु के पास आकर धारण करना पड़ता है जिस प्रकार पक्षी अन्डे पर बैठकर उसे सेता है और अपनी गर्मी दे देकर इसे योग्य बना देता है कि अन्डा टुकड़ टुकड़े

होकर पक्षी को परदार बनाकर ऊंचे उड़ने की योजना प्रदान करता है, उसी प्रकार अभ्यास, अनुराग, सत्संग और वचनों के सुनते रहने से कुछ दिनों बाद मनुष्य की आशा का अन्डा फूट निकलता है और तब उसे दूसरा जन्म कहते हैं।

अन्डा फूटने की वस्तु है। आसा छोड़ने की वस्तु है अन्डा को कौन अच्छा कहता है? क्या वह बन्धन की अवस्था नही है? बन्धन की अवस्था किसे रुचिकर है? लड़का अपनी खुशी से घण्टों एक जगह बैठा रहेगा परन्तु यदि तुम उसे कह दो कि आधा घण्टा यहाँ बैठा रहे तो फिर उसका बैठना कठिन होगा क्योंकि पहली अवस्था स्वतन्त्रता की थी। वह स्वयं ही चाहे घण्टों बैठा रहता परन्तु अब कहने से बैठना कठिन प्रतीत होता है क्योंकि बन्धन लगा दिया गया। इसी प्रकार अण्डे की दशा हैं इसके तो टूटने में ही कुशलता हैं। इसी प्रकार आसा, कामना और वासना को भी दशा हैं। यह भी त्यागने योग्य वस्तु हैं। इनके छोड़ने में ही कल्याण है।

यह आशा ही अविद्या का अण्डा है। यह ब्रह्माण्ड क्या है? ब्रह्मा के अंडे को ही तो ब्रह्माण्ड कहते हैं। अण्डे का पक्षी अन्धा रहता है। ब्रह्माण्ड में रहता हुआ मनुष्य रूपी पक्षी अज्ञान से आच्छादित रहता है। जब यह अविद्या रूपी ब्रह्म का अन्डा टूट जायेगा तो फिर स्वतन्त्रता आ जायेगी। अज्ञान और अविद्या वासना हैं। वासना अंधेरा है। अंधेरे में सुझाई नहीं देता है। अन्डे को फोडो तभी दिखाई देगा। राधास्वामी मत इसी अन्डे के फोड़ने की युक्ति बताता है और यही कारण है कि वह ब्रह्मा तक के विचार को अपना आदर्श नहीं बनाता क्योंकि इसी ब्रह्म में वासना, अविद्या और अज्ञान का बीज है और तुमने यदि पहले वचनों को थोड़ा सा ध्यान से पढ़ा है तो इसे किसी सीमा तक समझ लोगे। [शेष अगले अंक में]

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 1769

श्रीमान Sri Satya Narayan
H No. 1-8-313/1
Peduer Ghost Road.
Secunderabad. AP.

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दाताःदयाल प्रिंटर्स, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।